कालिदास के ऋतुसंहार खण्ड काव्य में सर्ग योजना

*डॉ. छगनलाल महोलिया

प्रस्तावना –

ऋतु–संहार महाकवि कालिदास की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक है। फिर भी कितने विद्वान इसे कहाकवि की रचना मानना ही नहीं चाहते। किसी ने इसका कारण यह बताया है कि मल्लिनाथ ने इस पर टीका नहीं लिखी और आलंकारिकों ने कालिदास के शतशः उद्धरण देते हुए भी इसका कोई उद्धरण नहीं दिया है अतः यह कालिदास की कृति नहीं है। दूसरे ने लिखा है कि शरद्वर्णन में हंसों द्वारा सुन्दरियों की ललित गति जीत ली गयी कहकर अंगनाओं के प्रति अविनय प्रकट किया गया है और ऐसा अविनय महाकवि कालिदास नहीं कर सकते थे। तीसरे ने लिखा है कि 'ऋतु–संहार' में 'संहार' शब्द का प्रयोग एक अनोखे अर्थ में हुआ है और साथ ही ग्रीष्म से आरम्भ करके वसन्त में अन्त करना ऋतु–वर्णन का एक अपरिचित ढंग है। आदि के दो प्रश्नों का उत्तर तो वत्सभट्टि की प्रशस्ति में ऋतु–संहार के अनुकरण से ही मिल जाता है अतः तीसरे का ही समावान अपेक्षित है।

यह वास्तव में एक सत्य है कि ग्रीष्म से षट्ऋतुवर्णन आरम्भ करना विचित्र लगता है। वर्षारम्भ विक्रम संवत् के अनुसार कहीं कहीं कार्तिक से माना जाता है और कहीं चैत्र से। दोनों दशाओं में निदाघ वर्ष के आरम्भ में नहीं पड़ता। कवि–परम्परा में कौन सी ऋतु का वर्णन शुरू में किया जाता था, यह कहना मुश्किल है। कारण षट्ऋतुवर्णन के जितने प्रसंग प्राप्य है, वे कालिदास के बाद के ही हैं अतः उनका इस चर्चा में कोई महत्व नहीं। आयुर्वेद के ग्रंथों में ऋतुओं के वर्णन में क्रमभेद तो है ही, वे कहां कहां कौन कौन से महीने में रहती है इस संबंध में भी मतभेद देखा जाता है। कारण छः ऋतुओं का सूक्ष्म भेद भारत के मध्यवर्ती भाग के लोगों द्वारा ही कल्पित मालूम होता है जिसका अनुभव प्रत्यक्ष रूप में अन्य भागों के लोग पूर्णतः नहीं कर सकते। अधिकांश भारतीयों के लिए तीन ही ऋतुएं होती है : ग्रीष्म, वर्षा और शीत।

इस अवान्तर चर्चा को छोड़कर हम कालिदास की रचना की ओर ध्यान दें तो मालूम होगा कि कालिदास ने जिस क्रम से एक एक सर्ग में एक ऋतु का वर्णन किया है उसका एक विशिष्ट प्रयोजन है। यह क्रम अनर्गल नहीं है। यह ऋतुसंहार का मनोयोग से अध्ययन करने वाला कोई भी पाठक सहज ही जान सकता है। ऋतुसंहार के कुछ श्लोकों से यह स्पष्ट हो जायगा।

ऋतुसंहार का प्रथम सर्ग ग्रीष्मवर्णन को लेकर आता है। पहला श्लोक ही सूचना दे देता है कि ऋतु बड़ी प्रचण्ड है और इस प्रचण्डता ने बेचारे कामदेव को ठंडा कर दिया है।

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षमवारिसंचयः।

दिनान्तरम्योऽभ्युप शान्तमन्मयो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये।।

(प्रिये ! यह गरमी आ गयी है जिसमें धूप बड़ी कड़ी हो गयी है, चन्द्रमा बड़ा सुहावना लगता है, दिन रात गहरे जल में स्नान किया जा सकता है, सांझ लुभावनी होती है और कामदेव तो एकदम ठंड़ा पड़ा रहता है।)

ग्रीष्म में काम ठंड़ा पड़ जाता है इसलिए उसे जगाने को खुले महल, मधुशाल, सुन्दर, वीणावादन, गीत आदि 'दीपन'

वस्तुओं की आवश्यकता होती है (श्लोक 3)। इस ऋतु में चित्त स्वतः कामाविष्टह नहीं होता, बल्कि किया जाता है – 'क्रियते–समन्यघम्' (श्लोक 5)। काम शायद बैल बेंचकर सोया रहता है, इसलिए उसे जगाने की आवश्यकता पड़ती है (श्लोक 8) :–

सचन्दनाम्बुव्यजनोद्भवानिलैः सहारयष्टिस्तनमण्डलार्पणैः।

सबल्लकीकाकलिमीतनिस्वनैर्विलोष्यते सुत इवाद्य मन्मयः।।

(अपने प्रेमी को चन्दन में बसे हुए ठंडे जल से भीगे हुए पंखों की ठंडी बयार झल कर, मोतियों के हारों की झालरों से सजे हुए अपने गोल गोल स्तन उसकी छाती पर रखकर या वीणा के साथ मीठे गले से गा गाकर मानों स्त्रियों द्वारा सोया हुआ कामदेव जगाया जाता है।) श्लोक 13 से 27 तक वो ग्रीष्म की भीषणता का वर्णन है वह इसका कारण बहुत स्पष्ट कर देता है। बिहारी आदि हिन्दी के अनेक कवि इस वर्णन से प्रभावित हुये हैं।

दूसरा सर्ग वर्षा–वर्णन का है। घनागम कामियों को प्रिय अवश्य है, परन्तु उसकी सत्ता काम से अलग है। वह स्वयं राजा है (श्लोक 1)। यह ऋतु प्रवासियों को विकल करने वाली है (श्लोक 4) और पशुपक्षियों तक के लिए आनन्ददायक है (श्लोक 5)। यह अभिसारिकाओं को उत्साह देती है (श्लोक 10), खंडिताओं की क्षमाशीला बनाती (श्लोक 11) और प्रोपिताओं को क्लेश देती है (श्लोक 12)। संक्षेप में, यह 'बहुगुणमरणीय' है, स्त्रियी के लिए चित्तहरि है और प्राणियों की प्राणभूत है (श्लोक 29)। ऐसी ऋतु काम की जाग्रति और वृद्धि में सहायक अवश्य होगी, परन्तु इससे क्या ! प्राघान्य तो काम का हुआ नहीं।

यदि वर्षा में बाह्य प्रकृति का सौन्दर्य मनुष्य पर हावी रहा है तो शरद में भी इसमें कमी नहीं आने पाती। शरद् का आगमन ही एक नववधू के रूप में हुआ है (श्लोक 1)। इसका सौन्दर्य युवकों के मन को डांवाडोल कर देने वाला है – (श्लोक 5)। नदी, आकाश, वायु, लता, पल्लव सभी का अनोखा ठाट–बाट है और मानव–सौन्दर्य इसके आगे मुंह की खाये बिना नहीं रह सकता। इस सर्ग के 3, 4, 5, 7, 10, 14, 18 आदि श्लोक इसके प्रमाण हैं। ऐसी हालत में महाकवि ने कोई अविनय नहीं किया जब उन्होंने हार स्वीकार कर ली –

हंसैजिता सुललिता गतिरंगनानामभोरुहैर्विकसितैर्मुखचन्द्रकान्तिः।

नीलोत्पलैमंदकलानि विलोकितानि भ्रूविभ्रमाश्च रुचिरास्तनुभिस्तरंगः।।

(इन दिनों हंसों ने सुन्दरियों की मनभावनी चाल को, कमलिनियों ने उनके चन्द्रमुख की चमक को, नीलकमलों ने उनकी मदभरी चित्तवन को और छोटी लहरियों ने उनकी भौहों की सुन्दर मटक को हरा दिया है।)

मगर प्राकृतिक सौन्दर्य की यह विजय स्थायी नहीं है। जीत अन्ततः मानव के पक्ष में ही दिखायी देती है क्योंकि इसी सर्ग के अन्त में 27वां श्लोक यों है :–

स्त्रीणां विहाय वदनेषु शशांकलक्ष्मीं

काम्यं च हंसवचनं मणिनूपुरेषु।

वन्धूककान्तिमधरेषु मनोहरेषु

क्वापि प्रयाति सुभगा शरदागमश्रीः।।

(शरद् की सुन्दर शोभा कहीं तो चन्द्रमा की चमक को छोड़कर स्त्रियों के मुंह पर पहुंच गई है, कहीं हंसों की मीठी

बोली छोड़कर रतन–बड़े बिछूओं में चली गई है और कहीं फूलों की लाली छोड़कर उनके निचले ओठों में जा चढ़ी है)। शरद्लक्ष्मी का इस प्रकार प्रवाण नारी के उत्कर्ष और साथ ही कामदेव के पक्ष को अपूर्व बल प्राप्त होने की सूचना है।

चौथा सर्ग हेमन्तवर्णन का है। कामपक्ष की प्रबलता का इस सर्ग में स्पष्ट–चित्रण है। सम्भोग के लिए स्त्रियों की तैयारी और तत्सम्बन्धी उनकी अनुभूतियों का वर्णन ही इस सर्ग के 19 श्लोकों में अधिक है यह कोई भी पाठक देख सकता है। विरहणी स्त्री प्रियंगु लता की भांति पीली पड़ती जाती है। (श्लोक 11), यह उत्पेक्षा भी काम की स्वाभाविक उत्कटता का परिचय देती है।

पांचवे सर्ग में शिशिर वर्णन है। शिशिर 'प्रकामकाम' और 'प्रमदा जनप्रिय' है (श्लोक 1)। इस ऋतु में स्त्रियों की वासना तीव्र अतः गम्भीर अपराधों को भी भुला देने में सहायक होती है (श्लोक 5–6)। शरद ऋतु के बीतने के साथ ही श्री का निवास ऋतु में नहीं, बाह्य प्रकृति में नहीं बल्कि नारी में हो गया है (श्लोक 13) :–

कनककमलकान्तैश्चारुताम्राधरोष्ठैः श्रवणतटनिषक्तैः पाटलोपान्ततेमैः।

उषप्ति वदनबिम्वैरंनसंसक्तकेशैः श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोऽश्च।।

इन दिनों प्रातः काल स्त्रियों के सुन्दर लाल–लाल ओठों वाले, लाल कोरों से सजी हुई बड़ी–बड़ी आंखों वाले, कन्धों पर फैले हुए बालों वाले और सुनहले कमल के समान चमकने वाले गोल–गोल मुखों को देखकर ऐसा लगता है मानो घर–घर में लक्ष्मी आ बसी हो।)

जहां नारी लक्ष्मी बन गई है, वहां काम की महिमा क्यों न बढ़े ? शिशिर में काम की इस महिमा का 'प्रबलसुरतकेलिः' और 'जातकन्दर्पदर्पः' जैसे पदों द्वारा सर्ग के अन्तिम श्लोक में किया गया हैः–

प्रचुरगुडविकारः स्वादुशालीक्षुरम्यः

प्रबलसुरतकेलि जतिकंदर्पदर्पः।

प्रियजनरहितानां चित्तसन्ताथहेतुः

शिशिरसमय एव श्रेयसे वोऽस्तु नित्यम्।।

(जिस शिशिर ऋतु में मिठाइयां बहुतायत से मिलती है, मीठे लगने वाले चावल और ईख चारों ओर सुहाते हैं, लोग बहुत सम्भोग करते हैं, कामदेव भी पूरे वेग से बढ़ जाता है और प्रियजन से रहित मन मसोस कर रह जाते हैं वह आप लोगों का भला करे।)

ऋतुसंहार का अन्तिम सर्ग वसन्त वर्णन है। वसन्त का आगमन एक योद्धा के रूप में होता है। फूले हुए आमों के बौर ही उसके तीखे बाण हैं, भौरों की पातें डोरी हैं और कामियों के मन ही उसके लक्ष्य हैं (श्लोक 1)। आखिर इस योद्धा का आगमन किसके लिए हुआ है ? किस शासक की विजय–पताका वह चारों ओर फैलाना चाहता है ? इस सर्ग से इसका उत्तर मिलेगा और इसमें ही पुस्तक की सर्ग योजना का सारा रहस्य केन्द्रित है।

वसन्त के आते ही सब कुछ 'चारुतर' हो जाता है (श्लोक 2)। कामिनियों के अंग ढीले पड़ जाते हैं और प्रियतमों के पास होते हुए भी वे अधीर हो जाती है (श्लोक 9)। इसमें अस्वाभाविकता ही क्या है और उन्हें दोष ही कौन दे जब उनके सारे अंगों में कामदेव ही पैठ गया है ?

नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डुः कठिनः स्तनेषु।

मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः स्त्रीणामनंगो बहुवास्थितोऽय।।

(इन दिनों कामदेव भी स्त्रियों की मदमाती आंखों में चंचलता, उनके गालों में पीलापन, स्तनों में कठोरता, कमर में गहरापन और नितम्बों में मोटापा बनकर आ बैठा है।)

पुरुष भी वसन्त–योद्धा की मार से बच नहीं सके हैं। उनकी भी दशा वैसी ही है :–

किं किंशुकैशुकिमुखच्छविभिर्न भिन्नं

किं कर्णिकारकुसुमैनं कृतं न दुग्धम्।

यत्कोकिलः पुनरयं मधुरैर्बवोभि–

र्यू नां मनः सुवदनानिहितं तिहन्ति।।

(अपनी प्यारियों के मुखड़ों पर लगे हुए प्रेमियों के हृदय को सुग्गे की ढोर के समान लाल टेसू के फूलों ने ही कुछ कम टूक टूक कर रखा था या कन्नैर के फूलों ने ही कुछ कम जला रखा था कि यह कोयल भी अपनी मीठी बोली सुनाकर उन्हें और मकार डालने पर उतारू हो रही है।)

इस प्रकार सबको काम के अधीन कर देना बसन्त योद्धा का ही पराक्रम है। इस पर क्रम के योग्य पुरस्कार भी मिलता है। गान्धर्व विधि से वीर पति का वरण करने वाली क्षत्राणी की भांति भूमि 'रक्तांशुका नव वधू' के रूप में उसका स्वागत करती है (श्लोक 21)। वसन्त की समस्त सम्पदा का विवरण देने के बाद महाकवि स्मरण दिला देते हैं कि वसन्त तो अनुचर मात्र है, यह सारा वैभव कुसुमायुध का है – 'सर्व रसायनमिदं कुसुमायुधस्य' (श्लोक 35)। इसीलिए काव्य के अन्त में काम की ही प्रशस्ति है –

आम्री मंजुलमंजरी वरशरः सत्किंशुकं यद्धनु–

र्ज्या यस्यालिकुलं कलंकरहितं छत्रं सितांशुः सितम्।

मत्तेभी मलयानिलः परभृता यद्वन्दिनो लोकजित्–

सोऽयं वो वितरीतरौतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः।।

('जिसके आम के बौर ही बाण हैं, टेसू ही धनुष है, भौरों की पांति डोरी है, मलयाचल से आया हुआ पवन ही मतवाला हाथी है, कोयल ही गायक है और शरीर न रहते हुए भी जिसने संसार को जीत लिया है वह कामदेव वसन्त के साथ आपका कल्याण करे।)

ऋतुसंहार का यह अन्तिम श्लोक सारी शंकाओं का स्पष्ट उत्तर है। ग्रीष्म में जो कालदेव ठंडा गया था और जिसके जगाने के लिए कोशिशें की गयीं वहीं अब न केवल जाग्रत और सबल है बल्कि शरीर–रहित होते हुए भी उसने सारे संसार को जीत लिया है। कुसुमायुध का यह उत्कर्ष, उसका यह जय गान ही महाकवि का अभीष्ट था। काव्य का अन्त इस मांगलिक जयगान से ही हो, इसके लिए ग्रीष्म–वर्णन से ही काव्य का प्रारम्भ आवश्यक था। परम्परा की चिन्ता न करके एक नए क्रम से ऋतु–वर्णन करके कालिदास ने अपनी काव्यपटुता का ही परिचय दिया है। काम के उत्कर्ष–गान के तुरन्त बाद 'अभ्युपशान्तमन्मथो' का प्रकरण कैसा अप्रिय लगता, इसे कोई भी काव्य–रसिक समझ सकता है।

निष्कर्ष –

कालिदास की प्रारम्भिक कृति होने से यह अधिक व्यंजनापूर्ण तो नहीं परन्तु अति ऊष्ण और अति शीत के अनुभव के बाद बसन्त का सुखद आगमन दिखना प्राकृतिक सत्य को आशावादी दृष्टिकोण से रखना अवश्य कहा जायेगा। वर्षा और शरद् में हम बाह्य सौन्दर्य को नारी सौन्दर्य से होड़ करते या उसे परास्त भी करते पाते हैं, परन्तु अन्ततः सारा सौन्दर्य नारी मूर्ति में ही महिमान्त्रित होता है। कालिदास का यह चित्रण प्रकृति, काम और सौन्दर्य में एक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है। प्रकृति का सौन्दर्य जहां फीका पड़ने लगता है वहां मानुषी का सौन्दर्य बढ़ता है मगर नारी–सौन्दर्य प्रकृति का सहयोग पाकर अचूक बन जाता है। कुछ ऐसा ही संकेत ऋतुसंहार प्रदान करता है और इस दृष्टि से भी कोई दूसरी विषय–योजना उपयुक्त नहीं हो सकती थी, कम से कम वह इस प्रकार का आशावादी संदेश नहीं दे पाती जो भारतीय मनीषा का मुख्य आग्रह रहा है।

***व्याख्याता**
संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय, गुडामालानी (बाड़मेर)

संदर्भ सूची

1. मेघदूत (4) में मल्लिनाथ ने इसे गिरिमल्लिका कहा है। हिन्दी में इसे करची या कुरैया कहते हैं।
2. भविष्यपुराण, 1/68/14 उत्त.
3. ऋग्वेद 9.1 13.3
4. अथर्ववेद (3.8.1, 2, 5)
5. भविष्यपुराण, 1/76/7
6. भविष्यपुराण, 1/76/9 पू.